REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2018

भारत में धार्मिक और सामाजिक सुधारः 19 वीं सदी के पूर्वार्ध में

मानसी कुमारी
एम० ए० (इतिहास),नालंदा खुला विश्वविद्यालय,पटना

सारांश –

राष्ट्रवाद तथा लोकतंत्र की वह उठती लहर, जिसने स्वतंत्रता के संघर्ष को जन्म दिया था उन आंदोलनों के रूप में भी सामन आई जिनका उद्देश्य सामाजिक संस्थाओं तथा भारतीय जनता के धार्मिक दृष्टिकोण का सुधार करना और उनका लोकतंत्रीकरण करना था। अनेक भारतीयों ने यह अनुभव किया कि सामाजिक और धार्मिक सुधार आधुनिक ढंग से देश का चौतरफा विकास करने तथा राष्ट्रीय एकता ओर एकजुटता को विकसित करने के लिए आवश्यक है। राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास, नई आर्थिक शक्तियों का उदय, शिक्षा का प्रसार, आधुनिक पश्चिमी विचारों तथा संस्कृति का प्रभाव, तथा दुनिया के बारे में पहले से अधिक जानकारी; इन सभी बातों ने भारतीय समाज के पिछड़ेपन तथा पतन के बारे में लोगों की चेतना को बढ़ाया ही नहीं बल्कि सुधार के संकल्प को और मजबूत किया।

18वीं शताब्दी में यूरोप में एक नवीन बौद्धिक लहर चल रही थी, जिसके फलस्वरूप एक जाग्रति के युग का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद तथा अन्वेषणा की भावना ने यूरोपोय समाज को एक प्रगति प्रदान की। विज्ञान तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने राजनीतिक सैनिक, आर्थिक तथा धार्मिक सभी पक्षों को प्रभावित किया और अब यूरोप सभ्यता का अग्रणी महाद्वीप था। उसके विपरीत भारत एक निश्चल, निष्प्राण तथा गिरते हुए समाज का चित्र प्रस्तुत करता था। तो इस प्रकार भारत का एक ऐसे आक्रान्ता से सामना हुआ जो न केवल रंग में श्वेत था, अपितु अपने आप को सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप से अधिक उत्तम समझता था।

मुख्य शब्दः– धार्मिक सुधार, राष्ट्रवाद, विकसित राष्ट्र, सामाजिक प्रसार

प्रस्तावना

अंग्रेजी राज का जो प्रभाव भारतीय समाज पर हुआ वह उन सभी प्रभावों से भिन्न था जो उस समय तक भारत पर हुए थे। विदेशी आक्रांताओं ने भारतीयों को अनेक बार हराया तथा कई विदेशियों ने भारत पर राज किया था। परन्तु भारत ने कभी भी आत्मविश्वास नहीं खोया था और उसे सदैव यह आन्तरिक विश्वास था कि उसकी सभ्यता तथा संस्कृति इन विदेशी शासकों की संस्कृति से अधिक उत्तम है। प्रायः ऐसा हुआ कि जो भी विदेशी भारत में बस गए, उन्होंने भारतीय धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता को अपना लिया तथा वे भारतीय समाज का अभिन्न अंग बन गए तथा उन्हीं में पूर्ण रूप से समा गए।

इस तरह 1858 के बाद पहले की सुधारवादी प्रवृत्ति का आधार और व्यापक हुआ। राजा राममोहन राय तथा ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे आरंभिक सुधारवादियों के काम को धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के प्रमुख

आंदोलनों ने और आगे बढ़ाया। विज्ञान, जनतंत्र तथा राष्ट्रवाद की आधुनिक दुनिया की आावश्यकताओं के अनुसार अपने समाज को ढ़ालने की इच्छा लेकर तथा यह संकल्प करके कि इस रास्ते में कोई बाधा नहीं रहने दी जाएगी, विचारशील भारतीयों ने अपने पारंपरिक धर्मो के सुधार का काम आरंभ किया। इसका कारण था कि धर्म उन दिनों जनता के जीवन का एक अभिन्न अंग था और धार्मिक सुधार भी कुछ खास संभव नही था। अपने धर्मो के आधार के प्रति सच्चे रहकर भी उन्होंने उनको भारतीय जनता की नई आवश्यकताओं के अनुसार ढाला।

ब्रह्म समाजः– राजा राममोहन राय की ब्रह्म परपरा को 1843 के बाद देवेंद्रनाथ ठाकुर ने आगे बढ़ाया। उन्होंने इस सिद्धांत का भी खंडन किया कि वैदिक ग्रंथ अनुल्लंघनीय है। 1866 के बाद इस आंदोलन को केशवचंद्र सेन ने आगे जारी रखा। ब्रह्म समाज ने हिंदू धर्म की कुरीतियों को हटाकर, उसे एक ईश्र की पूजा पर आधारित करके तथा वेदों को अनुल्लंघनीय न मानकर भी वेदों तथा उपनिषदों की शिक्षाओं के आधार पर उसमे सुधार लाने की कोशिश की। इसने आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के बेहतरीन तत्त्वों को अपनाने की भी कोशिश की। सबसे बड़ी बात यह है कि उकसने अपना आधार मानव–बुद्धि को बनाया तथा उसे यह जाँचने की कसौटी बतलाया कि प्राचीन या वर्तमान धार्मिक सिद्धांतों और व्यवहारों में क्या उपयोगी तथा क्या अनुपयोगी है। इस कारण धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या के लि पुरोहित वर्ग को भी ब्रह्म समाज ने अनावश्यक बताया। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार तथा क्षमता प्राप्त है कि वह अपनी बुद्धि की सहयाता से यह देखे कि किसी धार्मिक ग्रंथ या सिद्धांत में क्या गलत है और क्या सही है। इस तरह ब्रह्म समाजी मूलतः मूर्तिपूजा तथा अंधविश्वापूर्ण कर्मकांडों के, बल्कि पूरी ब्राह्मणवादी परंपरा के विरोधी थे। वे बिना किसी पुरोहित की मध्यस्थता के एक ईश्वर की पूजा करते थे।

ब्रह्म लोग महान समाज सुधारक भी थे। उन्होंने जाति प्रथा तथा बाल विवाह का जमकर विरोध किया। विधवा पुनर्विवाह समेत स्त्री–कल्याण के सभी उपायों तथा स्त्री–पुरूषों के बीच आधुनिक शिक्षा के प्रसार के वे समर्थक थे।

ब्रह्म समाज अपने आंतरिक कलह के कारण उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में कमजोर पड़ गया। इसके अलावा इसका प्रभाव अधिकांश नगरीय शिक्षित वर्ग तक ही सीमित था। फिर भी 19वीं तथा 20वीं सदी में बंगाल तथा शेष भारत के बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जीवन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा।

रामकृष्ण और विवेकानंदः– रामकृष्ण परमहंस (1835–1886) एक संत चरित्र व्यक्ति थे जो त्याग–ध्यान–भक्ति की पारंपरिक विधियों से धार्मिक मुक्ति पाने में विश्वास रखते थे। धार्मिक सत्य की खोज तथा स्वयं में ईश्वर का अनुभव करने के उद्देश्य से वे मुस्लिम तथा ईसाई दरवेशो के साथ भी रहे। उन्होंने बार–बार इस बात पर जोर दिया कि ईश्वर तक पहुंचने तथा मुक्ति पाने के कई मार्ग हैं और यह कि मनुष्य की सेवा ईश्वर की सेवा है, क्योंकि मनुष्य ईश्वर का ही मूर्तिमान रूप है।

उनके धार्मिक संदेशों को उनके महान शिष्य स्वामी विवेकानंद (1863–1902) ने प्रचारित किया तथा उनको समकालीन भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुसार ढालने का प्रयास किया। विवेकानंद का सबसे अधिक जोर सामाजिक क्रिया पर था। उन्होंने कहा कि ज्ञान अगर वास्तविक दुनिया में, जिसमें हम रहते हैं, कर्म से हीन हो तो व्यर्थ है। अपने गुरु की तरह उन्होंने भी सभी धर्मो की बुनियादी एकता की घोषणा की तथा धार्मिक बातों में संकुचित दृष्टिकोण की निंदा की। जैसा कि 1898 में उन्होंने लिखा थाः 'हमारी अपनी मातृभूमि के लिए दो महान धर्मो–हिंदुत्व तथा इस्लाम का संयोग ही.....एकमात्र आशा है।' साथ ही वे भारतीय

दर्शन–परंपरा के श्रेष्ठकर दृष्टिकोण में भी विश्वास रखते थे। वे खुद वेदांत के अनुयायी थे जिसे उन्होंने एक पूर्णतः बुद्धिसंगत प्रणाली बतलाया।

विवेकानंद ने भारतीयों की आलोचना की कि बाकी बुनिया से कटकर वे जड़ तथा मृतप्राय हो गए हैं। उन्होंने लिखाः 'दुनिया के सभी दूसरे राष्ट्रों से हमारे अलगाव ही हमारे पतन का कारण है और शेष दुनिया की धारा में समा जाना ही इसका एकमात्र समाधान है। गति जीवन का चिह्न है।'

विवेकानंद ने जाति–प्रथा तथा कर्मकांड, पूजा–पाठ और अंधविश्वास पर हिंदू धर्म के जोर देने की निंदा की तथा जनता से स्वाधीनता, समानता तथा स्वतंत्र चिंतन की भावना अपनाने का आग्रह किया।

स्वामी दयानंद और आर्यसमाजः– उत्तर भारत में हिंदू धर्म के सुधार का बीड़ा आर्यसमाज ने उठाया। इसकी स्थापना 1875 में स्वामी दयानंद (1824–1883) ने की थी। उनका मानना था कि तमाम झूठी शिक्षाओं से भरे पुराणों की सहायता से स्वार्थी व अज्ञानी पुरोहितों ने हिंदू धर्म को भ्रष्ट कर रखा था। दयानंद ने वेदों से प्रेरणा प्राप्त की जिनको ईश्वर–कृत होने के नाते वे अनुल्लंघनीय तथा सभी तरह के ज्ञान का भंडार मानते थे। उन्होंने बाद के उन सभी धार्मिक विचारों को रद्द कर दिया जो वेदों से मेल नहीं खाते थे। वेदों तथा उनकी अनुल्लंघनीयता पर इस तरह की पूर्ण निर्भरता ने उनकी शिक्षाओं को रूढ़िवादी रंग में रंग दिया क्योंकि उनकी अनुल्लंघनीयता का अर्थ यह है कि मानव–बुद्धि अंतिम निर्णायक नहीं रही।

फिर भी, इस दृष्टिकोण का एक बुद्धिसंगत पक्ष भी था। कारण कि ईश्वर–प्रदत्त होने के बावजूद वेदों की व्याख्या उन्हें तथा दूसरे मनुष्यों को ही बुद्धिसंगत ढंग से करनी होगी। वे मानते थे कि प्रत्येक को ईश्वर तक सीधे पहुंचने का अधिकार है। इसके अलावा, हिंदू कट्टरपंथ का समर्थन करने की बजाया उन्होंने इस पर हमला किया तथा इसके खिलाफ एक विद्रोह छोड़ा। परिणामस्वरूप वेदों की अपनी व्याख्या से उन्होंने जो भी शिक्षाएं ग्रहण कीं वे दूसर भारतीय सुधारकों द्वारा प्रचारित किए जा रहे धार्मिक व सामाजिक सुधारों से मिलती–जुलती थीं। वे मूर्तिपूजा, कर्मकांड और पुरोहितवाद के तथा खासकर जाति प्रथा और ब्राह्मणों द्वारा प्रचलित हिंदू धर्म के विरोधी थे। उन्होंने इसी वास्तविक जगत में रह रहे मनुष्यों की समस्याओं की ओर ध्यान दिया तथा दूसरी दुनिया में परंपरागत विश्वास से लोगों का ध्यान हटाया। वे पश्चिमी विज्ञानों के अध्ययन के भी समर्थक थे।

आर्यसमाजी सुधार के प्रखर समर्थक थे। स्त्रियों की दशा उनमें शिक्षा का प्रसार करने के लिए उन्होंने बहुत से काम किए। उन्होंने छुआछुत तथा वंश–परंपरा पर आधारित जाति–प्रथा की कठोरताओं का विरोध किया। वे सामाजिक समानता के प्रचारक थे तथा उन्होंने सामाजिक एकता को मजबूत बनाया। उन्होंने जनता में आत्मसम्मान तथा स्वावलंबन की भावना भी जगाई। राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला। साथ ही साथ, आर्यसमाज का एक मुख्य उद्देश्य हिंदुओं को धर्म–परिवर्तन से रोकना भी था। इसके कारण उन्होंने दूसरे धर्मो के खिलाफ एक जेहाद छेड़ दिया। यह जेहाद बीसवीं सदी में भारत में सांप्रदायिकता के प्रसार में सहायक कारण बन गया। आर्यसमाज के सुधार–कार्य ने समाज की बुराईयां खत्म करके जनता को एकबद्ध करने का प्रयास किया, मगर उसके धार्मिक कार्य में संभवतः अचेतन रूप में ही विकासमान हिंदुओं, मुसलमानों, पारसियों, सिखों और ईसाइयों के बीच पनप रही राष्ट्रीय एकता को भंग करने की ही प्रवृत्ति थी। उसे यह बात स्पष्ट नहीं थी कि भारत में राष्ट्रीय एकता धर्मनिरपेक्ष आधार पर तथा धर्म से परे रहकर ही संभव है ताकि यह सभी धर्मो के लोगों को समेट सके।

थियोसोफ्रिकल सोसायटीः– थियोसोफ्रिकल सोसायटी की स्थापना संयुक्त राज्य अमरीका में मैडम एच.पी. ब्लावात्सकी तथा कर्नल एच. एस. ओलकाट द्वारा की गई। बाद में ये भारत आ गए तथा 1886 में मद्रास के

करीब, आदियार में उन्होंने सोसायटी का मुख्यालय स्थापित किया। 1893 में भारत आने वाली श्रीमती ऐनी बेसेंट के नेतृत्व में थियोसोफी आंदोलन जल्द ही भारत में फैल गया। थियोसोफ़िस्ट प्रचार करते थे कि हिंदुत्व, जरथुस्त्र मत (पारसी धर्म) तथा बौद्ध मत जैसे प्राचीन धर्मो को पुनर्स्थापित तथा मजबूत किया जाए। उन्होंने आत्मा के पुनरागमन के सिद्धांत का भी प्रचार किया। धार्मिक पुनर्थापनावादियों के रूप में थियोसोफ़िस्टों को बहुत सफलता नहीं मिली। लेकिन आधुनिक भारत के घटनाक्रमों में उनका एक विशिष्ट योगदान रहा। यह पश्चिमी देशों के ऐसे लोगों द्वारा चलाया जा रहा एक आंदोलन था जो भारतीय धर्मो तथा दाशनिक परंपरा का महिमामंडन करते थे। इससे भारतीयों को अपना खोया आत्मविश्वास फिर से पाने में सहायता मिली, हालांकि अतीत की महानता का झूठा गर्व भी इसने उनके अंदर पैदा किया।

भारत में श्रीमती ऐनी बेसेंट के प्रमुख कार्यो में एक था बनारस में केंद्रीय हिंदू विद्यालय की स्थापना जिसे बाद में मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के रूप मं विकसित किया।

सैयद अहमद खान तथा अलीगढ़ आंदोलनः– मुसलमानों मे धार्मिक सुधार आंदोलनो का आरंभ कुछ देर से उभरा। उच्च वर्गो के मुसलमानों ने पश्चिमी शिक्षा व संस्कृति के संपर्क से बचने की ही कोशिशें कीं। केवल 1857 के महाविद्रोह के बाद ही धार्मिक सुधार के अधुनिक विचार उभरने शुरू हुए। इस दिशा में आरंभ 1863 में कलकत्ता में स्थापित मुहम्मडन लिटरेरी सोसायटी ने किया। इस सोसायटी ने आधुनिक विचारों के प्रकाश में धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्नों पर विचार–विमर्श को बढ़ावा दिया तथा पश्चिमी शिक्षा अपनाने के लिए उच्च तथा मध्य वर्गो के मुसलमानों को प्रेरित किया।

मुसलमानों में सबसे प्रमुख सुधारक सैयम अहमद खान (1817–1898) थे। वे आधुनिक वैज्ञानिक विचारों से काफी प्रभावित थे तथा जीवन भर इस्लाम के साथ उनका तालमेल करने के लिए प्रयासरत रहे। इसके लिए उन्होंने सबसे पहले यह घोषित किया कि इस्लाम की एकमात्र प्रामाणिक पुस्तक कुरान है और सभी इस्लामी लेखन गौण महत्त्व का है। उन्होंने कुरान की व्याख्या भी समकालीन बुद्धिवाद तथा विज्ञान की रोशनी में की। उनके अनुसार कुरान की कोई भी व्याख्या अगर मानव–बुद्धि, विज्ञान या प्रकृति से टकरा रही है तो वह वास्तव में गलत व्याख्या है। उन्होंने कहा कि धर्म के तत्त्व भी अपरिविर्तनीय नहीं हैं। धर्म अगर समय के साथ नहीं चलता तो वह जड़ हो जाएगा जैसा कि भारत में हुआ है। जीवन पर वे परंपरा के अंधानुकरण, रिवाजों पर भरोसा, अज्ञान तथा अबुद्धिवाद के खिलाफ संघर्ष करते रहे। उन्होंने लोगों से आलोचनात्मक दृष्टिकोण तथा विचार की स्वतंत्रता अपनाने का आग्रह किया। उन्होंने घोषणा की कि 'जब तक विचार की स्वतंत्रता विकसित नहीं होती, सभ्य जीवन संभव नहीं है।' उन्होंने कट्टरपंथ, संकुचित दृष्टि तथा अलग–थलग रहने के खिलाफ भी चेतावनी दी तथा छात्रों औरे दूसरे लोगों से खुले दिल वाला तथा सहिष्णु बनने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि बंद दिमाग सामाजिक–बौद्धिक पिछड़ेपन की निशानी है।

इसलिए आधुनिक शिक्षा का प्रचार जीवन–पर्यन्त उनका प्रथम ध्येय रहा। एक अधिकारी के रूप में उन्होंने अनेक नगरों में विद्यालय स्थापित किए थे और अनेक पश्चिमी ग्रंथों का उर्दू मे अनुवाद कराया था। उन्होंने 1875 में अलीगढ़ में मुहम्मडन एंग्लो–ओरियंटल कॉलेज की स्थापना, पाश्चात्य विज्ञान तथा संस्कृति का प्रचार करने वाले एक केंद्र के रूप में की। बाद में इस कॉलेज का विकास अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में हुआ।

मुहम्मद इकबालः– आधुनिक भारत के महानतम कवियों में एक, मुहम्मद इकबाल (1876–1938) ने भी अपनी कविता द्वारा नौजवान मुसलमानों तथा हिंदुओं के दार्शनिक एवं धामिक दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव डाला। स्वामी विवेकानंद की तरह उन्होंने भी निरंतर परिवर्तन तथा अबाध कर्म पर बल दिया और विराग, ध्यान तथा

एकांतवास की निंदा की। उन्होंने एक गतिमान दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह किया जो दुनिया को बदलने में सहायक हो। वे मूलतः एक मानवतावादी थे। वास्तव में उन्होंने मानव कर्म को प्रमुख धर्म की स्थिति तक पहुंचा दिया। उन्होंने कहा कि मनुष्य को प्रकृति या सत्ताधीशों के अधीन नहीं होना चाहिए बल्कि निरंतर कर्म द्वारा इस विश्व को नियंत्रित करना चाहिए। उनके विचार में स्थिति को निष्क्रिय रूप से स्वीकार करने से बड़ा पाप कोई नहीं है। कर्मकांड, विराग तथा दूसरी दुनिया में विश्वास की प्रवृत्ति की निंदा करते हुए उन्होंने कहा कि मनुष्य की इसी जीती–जागती दुनिया में सुख प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। अपनी आरंभिक कविता में उन्होंने देशभक्ति के गीत गाए हैं, हालांकि बाद में उन्होंने मुस्लिम अलगाववाद का समर्थन किया।

पारसियों में धार्मिक सुधारः– पारसी लोगों में धार्मिक सुधार की शुरूआत बंबई में 19वीं सदी के आरंभ में हुई। 1851 में रहमानी मज्दायासन सभा (रिलीजस रिफार्म एसिोसिएशन) का आरंभ नौरोजी फरदूनजी, दादाभाई नौरोजी, एस. एस. बंगाली तथा अन्य लोगों ने किया। इन सभी ने धर्म के क्षेत्र में हावी रूढ़िवाद के खिलाफ आंदोलन चलाया और स्त्रियों की शिक्षा तथा विवाह और कुल मिलाकर स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के बारे में पारसी सामाजिक रीति–रिवाजों पर आधुनिकीकरण का आरंभ किया। कालांतर में पारसी लोग सामाजिक क्षेत्र में पश्चिमीकरण की दृष्टि से भारतीय समाज के सबसे अधिक विकसित अंग बन गए।

सिखों में धार्मिक सुधारः– सिख लोगों में धार्मिक सुधार का आरंभ 19वीं सदी के अंत में हुआ जब अमृतसर में खालसा कॉलेज की स्थापना हुई। लेकिन सुधार के प्रयासों को बल 1920 के बाद मिला जब पंजाब में अकाली आंदोलन का आरंभ हुआ। अकालियों का मुख्य उद्देश्य गुरूद्वारों के प्रबंध का शुद्धीकरण करना था। इन गुरूद्वारों को भक्त सिखों की ओर से अनेकों जमीनों और धन दानस्वरूप मिलते थे, परंतु इनका प्रबंध भ्रष्ट तथा स्वार्थी महंतों द्वारा मनमाने ढंग से किया जा रहा था। अकालियों के नेतृत्व में 1921 में सिख जनता ने इन महंतों तथा इनकी सहायता करने वाली सरकार के खिलाफ एक शक्तिशाली सत्याग्रह आंदोलन छेड़ दिया।

जल्द ही अकालियों ने सकार को मजबूर कर दिया कि वह एक सिख गुरूद्वारा कानून बनाए। यह कानून 1922 में बना ैर 1925 में इसमें संशोधन किए गए। कभी–कभी इस कानून की सहायता से मगर अधिकतर सीधी कार्यवाही के द्वारा सिखों ने गुरूद्वारों से भ्रष्ट महंतों को धीरे–धीरे बाहर खदेड़ दिया, हालांकि इस आंदोलन में सैकड़ों लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा।

ऊपर जिन सुधार आंदोलनों तथा विशिष्ट सुधारकों का वर्णन किया गया है उनसे अलग बहुत से दूसरे इसी तरह के आंदोलन और सुधारक भी 19वीं तथा 20वीं सदी में हुए हैं।

आधुनिक युग में धार्मिक सुधार के आंदोलन में एक बुनियादी समानता पाई जाती है। ये सभी आंदोलन बुद्धिवाद तथा मानवतावाद के दो सिद्धांतों पर आधारित थे, हालांकि अपनी ओर लोगों को खींचने के लिए कभी–कभी वे आस्था तथा प्राचीन ग्रंथों का सहारा भी लते थे। इसके अलावा, उन्होंने उभरते हुए मध्य वर्ग आधुनिक शिक्षा–प्राप्त प्रबुद्ध लोगों को सबसे अधिक प्रभावित किया। उन्होंने बुद्धिविरोधी धार्मिक कठमुल्लापन तथा अंध श्रद्धा से मानव बुद्धि की तर्क–विचार की क्षमता को मुक्त कराने का प्रयास किया। उन्होंने भारतीय धर्मो के कर्मकांडी, अंधविश्वासी, बुद्धिविरोधी तथा पुरणपंथी पक्षों का विरोध किया। उनमें से अनेक ने, किसी ने कम और किसी ने अधिक, धर्म को अंतिम सत्य का भंडार मानने से इंकार कर दिया तथा किसी भी धर्म या उसके ग्रंथों मे उपस्थित सत्य को तर्क, बुद्धि तथा विज्ञान की कसौटी पर परखा।

एक समन्वित संस्कृति के विकास की वह प्रक्रिया जो सदियों से चली आ रही थी, उस पर इस कारण से कुछ अंकुश लगा, हालांकि दूसरे क्षेत्रों में भारतीय जनता के राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। इस प्रवृत्ति पर दुष्परिणाम तब स्पष्ट हो गया जब यह पाया गया कि मध्य वर्गो में राष्ट्रीय चेतना के तीव्र विकास के

साथ–साथ एक और चेतना, अर्थात् सांप्रदायिक चेतना, का विकास भी हो रहा था। आधुनिक काल में सांप्रदायिकता के विकास के अनेक दूसरे कारण भी थे, परंतु अपनी प्रकृति के कारण धर्म–सुधार के आंदोलनों ने निश्चय ही इसमें कुछ योगदान किया।

सामाजिक सुधार

उन्नींसवीं सदी के राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख प्रभाव सामाजिक सुधार के क्षेत्र में देखने को मिला। नवशिक्षित लोगों ने बढ़–बढ़कर रूढ़िवादी सामाजिक रीतियों तथा पुरानी प्रथाों से विद्रोह किया। वे अब बुद्धिविरोधी और अमानवीय सामाजिक व्यवहारों को और सहने को तैयार न थे। उनका विद्रोह सामाजिक समानता तथा सभी व्यक्तियों की समान क्षमता के मानवतावादी आदर्शो से प्रेरित था।

समाज–सुधार के आंदोलन में लगभग सभी धर्म–सुधारकों का योगदान रहा। कारण यह कि भारतीय समाज के पिछड़ेपन की तमाम निशानियों– जैसे जाति प्रथा या स्त्रियों की असमानता को अतीत में धार्मिक मान्यता प्राप्त रही है। साथ ही सोशल कांफ्रेंस, भावत सेवक समाज जैसे कुछ अन्य संगठनों तथा ईसाई मिशनरियों ने भी समाज–सुधार के लिए काफी काम किया। ज्योतिबा गोविंद फुले, गोपाल हरि देशमुख, जस्टिस रानाडे, के.टी. तेलंग, बी.एम. लाबारी, डी.के. कर्वे, शशिपद बनर्जी, विपिनचंद्र पाल, वीरेशलिंगम, ई.वी. रामास्वामी नायकर 'पेरियार' और भीमराव अंबेडकर तथा दूसरे प्रमुख व्यक्तियों की भी एक प्रमुख भूमिका रही। बीसवीं सदी में, और खासकर 1919 के बाद राष्ट्रीय आंदोलन समाज–सुधार का प्रमुख प्रचारक बन गया। जनता तक पहुंचने के लिए सुधारकों ने प्रचार–कार्य में भारतीय भाषाओं का अधिकाधिक सहारा लिया। उन्होंने अपने विचारों को फैलाने के लिए उपन्यासों, नाटकों, काव्य, लघु कथाओं, प्रेस तथा 1930 के दशक में फिल्मों का भी उपयोग किया।

उन्नींसवीं सदी में कुछ मामलों में समाज–सुधार का कार्य धर्म–सुधार से जुड़ा था, मगर बाद के वर्षो में यह अधिकाधिक धर्मनिरपेक्ष होता गया। इसके अलावा रूढ़िवादी धार्मिक दृष्टिकोण वाले अनेक व्यक्तियों ने भी इसमें भाग लिया। इसी तरह आरंभ में समाज–सुधार बहुत कुछ ऊंची जातियों के नवशिक्षित भारतीयों द्वारा अपने सामाजिक व्यवहार का आधुनिक पश्चिमी संस्कृति व मूल्यों के साथ तालमेल बिठाने के प्रयासों का परिणाम था। लेकिन धीरे–धीरे इसका क्षेत्र व्यापक होकर समाज के निचले वर्गो तक फैल गया और यह सामाजिक क्षेत्र की क्रांतिकारी पुनर्रचना करने लगा। कालांतर में सुधारकों के विचारों व आदर्शो को लगभग सार्वभौमिक मान्यता मिली तथा आज वे भारतीय संविधान के अंग हैं।

समाज सुधार के आंदोलनों में मुख्यतः दो लक्ष्यों को पूरा करने के प्रयास किएः (अ) स्त्रियों की मुक्ति तथा उनको समान अधिकार देना, तथा (ब) जाति–प्रथा की जड़ताओं को समाप्त करना तथा खासकर छुआछुत का खात्मा।

स्त्रियों की मुक्ति

भारत में स्त्रियां अनगिनत सदियों से पुरूषों की अधीनता तथा सामाजिक उत्पीड़न का शिकार रही है। भारत में प्रचलित विभिन्न धर्मो व उन पर आधारित गृहस्थ–नियमों ने स्त्रियों को पुरूषों से हीन स्थान दिया। इस संबंध में उच्च वर्गो की स्त्रियों की स्थिति किसान औरतों से भी बदतर थी। चूँकि किसान स्त्रियां अपने पुरूषों के साथ खेतों में काम करती थीं, इसलिए उनको बाहर आने–जाने की कुछ अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी और परिवार में उनकी स्थिति उच्च वर्गो की स्त्रियों से कुछ मामलों में बेहतर थी। उदाहरण के लिए वे शायद ही कभी पद्रे में रहती हो तथा उनमें से अनेकों को पुनर्विवाह के अधिकार प्राप्त थे।

पारंपरिक विचारधारा में पत्नी और मां की भूमिका में स्त्री की प्रशंसा तो की गई है मगर व्यक्ति के रूप में उसे बहुत हीन सामाजिक स्थान दिया गया है। अपने पति से अपने संबंधों से अलग उसका भी एक व्यक्तित्व है, ऐसा कभी नहीं माना गया। अपनी प्रतिभा या इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिए घरेलू महिला से भिन्न कोई अन्य भूमिका उसे प्राप्त न थी। वास्तव में, उसे पुरूष का पुंछल्ला मात्र माना गया। उदाहरण के लिए, हिंदुओं में किसी स्त्री का एक ही विवाह संभव था, मगर किसी पुरूष को अनेक पत्नियां रखने का अधिकार था। मुसलमानों में भी यह बहुपत्नी–प्रथा प्रचलित थी। देश के काफी बड़े भाग में स्त्रियों को पर्दे में रखा जाता था। बाल–विवाह की प्रथा आम थी, आठ–नौ वर्ष के बच्चे भी ब्याह दिए जाते थे। विधवाएं पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी और उन्हें त्यागी व बंदी जीवन बिताना पड़ता था। देश के अनेक भागों मं सती–प्रथा प्रचलित थी जिसमें एक विधवा स्वयं को पति की लाश के साथ जला लेती थी।

हिंदू स्त्री को उत्तराधिकार में सपंत्ति पाने का हक नहीं था, न उसे अपने दुखमय विवाह को रद्द करने का कोई अधिकार था। मुस्लिम स्त्री को संपत्ति में अधिकार मिलता तो था, मगर पुरुषों का केवल आधा और तलाक के बारे में स्त्री और पुरूष के बीच सैद्धांतिक समानता भी न थी। वास्तव में, मुस्लिम स्त्रियां तलाक से भयभीत रहती थीं। हिंदू व मुस्लिम स्त्रियों की सामाजिक स्थिति तथा उनके मान–सम्मान भी मिलते–जुलते थे। इसके अलावा, दोनो ही सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पुरूषों पर पूरी तरह निर्भर थी। अंतिम बात यह कि शिक्षा के लाभ उनमें से अधिकांश को प्राप्त नहीं थे। साथ ही, स्त्रियों को अपनी दासता को स्वीकार कर लेने, बल्कि इसे सम्मान का प्रतीक समझने के पाठ भी पढ़ाए जाते थे। यह सही है कि भारत में कभी–कभी रजिया सुल्ताना, चांद बीबी तथा अहिल्याबाई होल्कर जैसी स्त्रियां भी हो गुजरी हैं। मगर ये उदाहरण मात्र अपवाद हैं और इनमें सामान्य स्थिति में कोई अंतर नहीं आता।

उन्नीसवीं सदी के मानवतावादी व समानतावादी विचारों से प्रेरित होकर समाज–सुधारकों ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए एक शक्तिशाली आंदोलन छेड़ा। कुछ सुधारकों ने व्यक्तिवाद तथा समानता के सिद्धांतों का सहारा लिया, तो दूसरों ने घोषणा की कि हिंदू धर्म, इस्लाम या जरथुस्त्र मत स्त्रियों की ही स्थिति के प्रचारक नहीं है और यह कि सच्चा धर्म उन्हें एक ऊंचा सामाजिक दर्जा देता है।

जाति प्रथा के विरुद्ध संघर्ष

जाति–व्यवस्था समाज–सुधार आंदोलन के हमले का एक और प्रमुख निशाना थी। इस समय हिंदू अनगिनत जातियों में बंटे थे। कोई व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता था उसी के नियमों से उसके जीवन का एक बड़ा भाग संचालित होता था। व्यक्ति किससे विवाह करे तथा किसके साथ भोजन करे, इसका निर्धारण उसकी जाति से ही होता था। उसके पेशे तथा उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता का निर्धारण भी बहुत कुछ इसी से होता था। इसके अलावा जातियों को भी सावधानीपूर्वक अनेक ऊंचे–नीचे दर्जे में रखा गया था। इस व्यवस्था में सबसे नीचे अछूत आते थे जों हिंदू आबादी का लगभग 20 प्रतिशत भाग थे; इन्हीं को बाद में अनुसूचित जातियां कहा गया। ये अछूत अनेकों कठोर नियोग्यताओं और प्रतिबंधों से पीड़ित थे जो विभिन्न जगहों में भिन्न–भिन्न थीं। उनके स्पर्श मात्र से किसी व्यक्ति को अपवित्र माना जाता था।

जाति प्रथा की एक और बुराई भी थी। यह अपमानजनक, अमानवीय और जन्मगत असमानता के जनतंत्र–विरोधी सिद्धांत पर आधारित तो थी ही, साथ ही यह सामाजिक विघटन का कारण भी थी। इसने लोगों को अनेकों समूहों में बांटकर रख दिया था। आधुनिक काल में यह प्रथा एकता की राष्ट्रीय भावना के विकास और जनतंत्र के प्रसार में एक प्रमुख बाधा रही है। यहां यह भी कह दिया जाए कि जातिगत चेतना, खासकर विवाह–संबंधों क बारे में, मुसलमानों ईसाइयों तथा सिखों में भी रही है तथा वे भी कम उग्र रूप में ही सही, छुआछुत का पालन करते रहे हैं।

शासन से मुक्ति के लिए लड़ रहे थे, जाति प्रथा का समर्थन नहीं कर सकते थे क्योंकि यह उन सिद्धांतों की विरोधी थी। इस तरह आरंभ से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, बल्कि पूरे राष्ट्रीय आंदोलन ने जातिगत, विशेषाधिकारों का विरोध किया और जाति–लिंग–धर्म के भेदभाव के बिना व्यक्ति के विकास के लिए समान नागरिक अधिकारों तथा समान स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते रहे ।

उन्नीसवीं सदी के मध्य से अनेक व्यक्तियों व संगठनों ने अछूतों के बीच शिक्षा–प्रसार का काम आरंभ किया (इन अछूतों को बाद में कमजोर वर्ग या अनुसूचित जातियां कहा गया)। उनके लिए स्कूलों तथा मंदिरों के दरवाजे खुलवाने, सार्वजनिक कुओं और तालाबों से उन्हें पानी भरने का अधिकार दिलाने तथा उनको उत्पीड़ित करने वाली अन्य सामाजिक नियोग्यताओं और भेदभावों को नष्ट करने के प्रयास किए गए।

निष्कर्ष

1950 के संविधान ने अंततः छुआछुत के खात्मे के लिए एक कानूनी आधार तैयार किया। इसने घोषणा की कि अस्पृश्यता समाप्त की जा चुकी है और किसी भी रूप में इसका पालन माना है। छुआछुत के आधार पर किसी पर कोई भी नियोग्यता लादना एक अपराध होगा जिसके लिए कानून के अनुसार दण्ड दिया जाएगा। संविधान कुओं, तालाबों या नहाने के घाटों के उपयोग पर या दुकानों, रेस्तरांओं, होटलों और सिनेमाघरों में किसी के प्रवेश पर रोक लगाने से भी मना करता है। इसके अलावा भावी सरकारों के मार्गदर्शन के लिए जो नीति–निर्देशक सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं, उनमें से एक में यह बात कही गई है..... 'राज्य जनकल्याण को प्रोत्साहित करने का प्रयास करेगा और इसके लिए जितन प्रभावी ढंग से संभव हो सके, एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था लाने तथा उसकी रक्षा करने का प्रयास करेगा जिसकी राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं का आधार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय हो।' फिर भी जाति–प्रथा की बुराइयों के खिलाफ संघर्ष, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, अभी भी भारतीय जनता का एक प्रमुख कार्यभार है।

संदर्भ सूची

1. अहमद एजाज : इस्लामिक मॉर्डनिज्म इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान
2. स्मिथ सी. एचः इंडियन नेशनललिज्म एण्ड सोसियल रिफार्म
3. जॉन्स किनेतः आर्या धर्माः हिंदु कॉनसियसनेस इन 19वीं सेन्चुरी पंजाब
4. जॉरडेन्स जे. टी. एफ. : दयानन्द सरस्वती
5. नरैन, भी. ए. : सोशियल हिस्ट्री ऑफ इंडिया– 19वी शताब्दी
6. नटराजन, एस. : ए सेन्चुरी ऑफ रिफार्म इन इंडिया
7. परेख मनीलाल : ब्रह्म समाज
8. रानाडे एम. जी. : रिलीजियस एण्ड सोसियल रिफार्म
9. सरकार, सुमितः बीबीलियोग्राफी सर्वे ऑफ सोसियल रिफार्म मुवमेन्ट इन द 18वीं एण्ड 19वीं शताब्दी (आई. सी.एच.आर. 1975)
10. जाचेरियस एच. सी. ई. : रिनासेन्ट इंडिया